

भारतीय परम्परा में दान का महत्व

डॉ० चन्दन लाल गुप्ता*

महर्षि पतञ्जलि ने अष्टांगों में यम को प्रथम स्थान दिया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पंचयम स्वस्थ समाज की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय हैं—‘अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः’(योगसूत्र 2/30)। इनमें ‘अपरिग्रह’ अर्थात् अनावश्यक वस्तु संग्रह के त्याग को प्रतिष्ठित कर सामाजिक विषमता की खाई को पाटना है। ‘दानमेकं कलौ युगे’ यह वचन महाभारत स्मृति ग्रन्थों एवं पुराणों में मिलता है। मनु ने सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में क्रमशः तप, ज्ञान, यज्ञ एवं दान को धार्मिक जीवन का प्रमुख रूप कहा है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी दान को कल्याणकारी बतलाया है— ‘जेन केन विधि दीन्हें दान करइ कल्याण’। कलियुग में तप, ज्ञान एवं यज्ञ की साधना कठिन हो जाती है। इस युग में दान देने और दूसरों की सहायता करने की विशेष आवश्यकता होती है। ‘दान’ शब्द का अर्थ है, देना जिसमें अपनी वस्तु का दूसरे के लिये त्याग किया जाय। त्याग होम एवं याग में भी होता है।

पूर्वमीमांसासूत्र के भाष्यकार शबर ने होम, याग एवं दान के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा है कि अपना सम्पूर्ण त्याग तीनों कृत्यों में मिलता है। याग वह है जिसमें इष्ट देव के निमित्त मंत्र के साथ किसी वस्तु का त्याग होता है, किन्तु होम का महत्वपूर्ण बात है अग्नि में किसी वस्तु को छोड़ना और दान में अपनी किसी वस्तु का त्याग करना होता है, जो अन्ततः जिसको दी जाती है उसी की हो जाती है। इस त्याग में श्रद्धा का होना अनिवार्य है। जैसा कि गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(गीता 17/28)

अर्थात् बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया गया दान, तपा हुआ तप और जो कुछ भी शुभ कर्म किया जाता है वह ‘असत्’ इस प्रकार कहा गया है। अतः वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद ही।

मनुस्मृति (4/235) का भी कहना है कि आदर सहित देने वाला एवं आदरपूर्वक लेने वाले स्वर्ग प्राप्त करते हैं और इस नियम के विपरीत आचरण करने वाले नरक में जाते हैं।

ऋग्वेद का दानसूक्त दान के महान् आदर्श को उपस्थित करते हुए कहता है कि देवताओं ने केवल क्षुधा की ही सृष्टि नहीं की अपितु मृत्यु की भी रचना की।

(पी.डी.एफ.—संस्कृत)डॉ० एस० राधाकृष्णन्, यू.जी.सी.

जो व्यक्ति बिना दान दिये खाता है उसको भी मृत्यु के ही पास जाना पड़ता है। दाता का धन कभी क्षीण नहीं होता है। किन्तु जो दान नहीं देता है। उस मनुष्य को कभी सुख प्राप्त नहीं होता है—

न वा उ देवाः क्षुधमिद्विधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते॥

(ऋ० 10/117/1)

जो भूखे को अन्नदान से तृप्त करता है वह सर्वश्रेष्ठ दाता है। दान न देने वाले व्यक्ति की आवश्यकता पड़ने पर कभी कोई सहायता नहीं करता है। जिसका घर अन्न से परिपूर्ण है और वह घर आये हुए दुर्ब एवं अन्न की याचना करने वाले भिक्षुक को अन्नदान नहीं करता है घर पर आये हुए याचक को धनवान् व्यक्ति के द्वारा धनदान अवश्य करना चाहिए। क्योंकि यह धन नश्वर है एवं इसी लोक में रह जाता है, परन्तु दान के द्वारा जो कीर्ति प्राप्त होती है, वह इहलोक एवं परलोक दोनों में मनुष्य की सहायक होती है। ऋग्वेद (10/117/6) गीता (3/13) एवं मनुस्मृति (3/118) में यहाँ तक कह दिया गया है कि जो देवताओं का हविष—प्रदानादि से पोषण नहीं करता है और न मित्र वर्ग को देता है, केवल स्वयं ही खाता है, ऐसा व्यक्ति अन्न को न खाकर साक्षात् पाप को ही खाता है। धर्मशास्त्रों ने स्त्री और शूद्र (शूद्र को वैदिक धर्म छोड़कर) सभी को दान का अधिकारी बतलाया है। दान न देने वाले के विषय में अपराक का कहना है कि दो प्रकार के व्यक्तियों के गले में पाषाण खण्ड बांधकर जल में डुबो देना चाहिए। उनमें एक वह जो धन होने पर भी दान नहीं देता और दूसरा जो तपस्या न करने वाला दरिद्र। विभिन्न प्रकार के दोनों से प्राप्त पुण्यफल के विषय में ऋग्वेद (10/107/2,7) कहता है कि जो गायों का दान करता है वह स्वर्ग में उच्च स्थान पर जाता है। जो अश्वदान देता है वह सूर्य लोक में स्थान पाता है, जो सूवर्ण का दान करता है वह देवता होता है, जो वस्त्रदान करता है वह दीर्घजीवन प्राप्त करता है। वैदिक काल में गाय, रथ, अश्व, ऊँट, नारी, अन्न आदि के दान का प्रचलन था, इसमें भी गोदान का महत्व सभी कालों में रहा है।

भारतीय परम्परा ने व्यक्ति को अपने धन का एक निश्चित भाग ही देने का विधान किया है। अपने आश्रित परिवार के लोगों एवं सेवकों का ध्यान रखकर दान देना अनुचित है। मनु आदि ने इसकी कड़ी निन्दा की है। उनका कहना है कि जो परिवार भरण—पोषण की चिन्ता न करके दिया जाता है वह धर्म का पुटिपूर्ण अनुकरण है। धर्मशास्त्रकार हेमाद्रि ने यह व्यवस्था दी है कि व्यक्ति को अपने धन का पाँच भागों में विभाजन करके तीन भाग स्वयं एवं परिवार के लिए तथा शेष दो भाग धर्मकार्य में लगाना चाहिए।

विश्वजित् यज्ञ में राजा अपना सर्वस्व दान कर देता है। किन्तु जैमिनी (6/7/3) के अनुसार विश्वजित् यज्ञ में राजा भी सम्पूर्ण पृथ्वी का दान नहीं कर सकता है। क्योंकि पृथ्वी पर सबका अधिकार है। व्यवहारमयूख में कहा गया है

कि पृथ्वी भूखण्डों पर जोतने-बोने वाले का अधिकार होता है, राजा को केवल एकत्र करने का अधिकार है। जब राजा भूमि को स्वयं के लिए क्रय कर लेता है तब वह उसको दान कर सकता है। वह केवल कर लेने का अधिकारी है।

अब हम दान से सम्बन्धित दाता, दातव्य (देने वाली वस्तु), देश, काल और पात्र के वैशिष्ट्य को जान लेना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। देवल ने दाता को पापहीन, धार्मिक, श्रद्धालु, दुर्गुणहीन, पवित्र आचरण वाला एवं निन्दित व्यवसाय से रहित होना बतलाया है और कहा है कि बहुत कम लोग ही स्वयं का कमाया हुआ धन दान करते देखे जाते हैं। वास्तव में पापकर्मों से अर्जित बहुत अधिक धन की अपेक्षा परिश्रम से अर्जित अल्प धन का दान ही महान् होता है। देवल के अनुसार वह वस्तु, दान योग्य है जिसे दाता ने किसी को बिना सताये, चिन्ता एवं दुःख दिये बिना स्वयं अर्जित किया हो; वह वस्तु छोटी हो अथवा मूल्यवान्। दान का पुण्यफल देयवस्तु के मूल्य पर निर्भर न रहकर दाता के मनोभाव, सार्थकता एवं उसके धनार्जन के ढंग पर निर्भर करता है। दान व्यक्ति को अपने सामर्थ्य के अनुसार अवश्य ही देना चाहिए।

भिन्न-भिन्न धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में देय वस्तुओं को उत्तम, माध्यम एवं अधम माना गया है। लेकिन कौन सी वस्तु उत्तम या अधम होती इसके विषय में भिन्नता पायी जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में सात्त्विक दान के विषय में दातव्य देश एवं काल तथा पात्र के विषय में बड़े सुन्दर ढंग से कहा है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

(गीता 17/20)

अर्थात् देना कर्तव्य है ऐसी भावना से जो दान उपकार न करने वाले के प्रति देश-काल एवं पात्र के प्राप्त होने पर दिया जाता है वह सात्त्विक बतलाया गया है। दान में देश एवं काल तथा पात्र की विशेष योग्यता का ध्यान रखा गया है। जिस देश-काल में जिस वस्तु का अभाव हो उसी देश काल में उस वस्तु का दान उत्तम होता है। भूखे, अनाथ, दुःखी, रोगी और असमर्थ व्यक्तियों को अन्न, वस्त्र औषधि एवं अन्याय जिस वस्तु के दान के लिए वे योग्य समझे जाते हैं। इनके अतिरिक्त श्रेष्ठ आचरण वाले विद्वान् ब्राह्मणों की धनादि द्वारा सेवा करनी चाहिए। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में ब्राह्मण के विवाह के लिए तथा उसे व्यवस्थित जीवन व्यतीत करने के लिए जो दान दिया जाता है, उसकी महत्ता बतलाई गई है। दक्ष (3/32-33) ने कहा है कि मातृपितृविहीन ब्राह्मण के संस्कार विवाह आदि कराने से जो पुण्य प्राप्त होता है उसे तौला नहीं जा सकता है और ब्राह्मण को व्यवस्थित करने से जो पुण्यफल प्राप्त होता है वह अग्निष्टोम आदि यज्ञ से भी प्राप्त नहीं होता है। प्राचीन समाज में ब्राह्मणों के आचरण पवित्र और विचार उच्चकोटि के थे। वे ज्ञान परम्परा के वाहक एवं संरक्षक थे और निःशुल्क विद्यादान करते थे। प्राचीन काल में शिक्षण संस्थाओं का अभाव था। अतः राजा का धार्मिक कर्तव्य होता था कि वह

ब्राह्मणों की ऐसी सहायता करे कि वह अपने कर्तव्यों का भली प्रकार सम्पादन कर सके।

दान मुख्यतः तीन प्रकार के कहे जा सकते हैं। जो दान प्रतिदिन किया जाता है वह 'नित्य', जो विशिष्ट अवसरों पर किया जाता है वह 'नैमित्तिक' और जो इच्छाओं की सिद्धि या प्राप्ति के लिए दिया जाता है वह 'काम्य' कहलाता है। गीता ने दान को सात्त्विक राजस और तामस के भेद से तीन प्रकार का बतलाया है। सात्त्विक दान (17/20) का वर्णन हो चुका है। जब क्लेशपूर्वक उपकार करने वाले के उपकार के उद्देश्य से अथवा फल (इच्छापूर्ति) को दृष्टि में रखकर जो दान दिया जाता है वह राजस कहलाता है (गीता 17/21)। जो दान बिना सत्कार के घृणा के साथ अनुचित देश काल में अयोग्य पात्र के प्रति दिया जाता है, तामस दान कहलाता है। (17/22)

धर्मशास्त्रों में प्रतिदिन के दानकर्म की अपेक्षा विशिष्ट अवसरों के दानकर्म को सर्वाधिक सफल एवं पुण्यदायक माना गया है। विशिष्ट दिनों (वनपर्व-200/125) में सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायन का पहला दिन, षडशीति के प्रारम्भ में और सूर्य-चन्द्र ग्रहणों के समय दिया गया दान अक्षय पुण्यफल प्रदान करने वाला होता है। अन्य ग्रन्थों में भी अमावस्या के दिन, जब रात-दिन बराबर हों, दिनक्षय (जब तीन तिथियाँ एक ही दिन पड़ जाती हैं) में, द्वादशी में और संक्रान्ति में, दान को अत्यन्त पुण्यकारी बतलाया गया है।

हमें दान अवश्य की करना चाहिए, क्योंकि समाज में बहुत से ऐसे लोग हैं जो अपने जीवन निर्वाह के लिए विभिन्न कारणों से आत्मनिर्भर नहीं हो पाते हैं। प्राचीनकाल में दान के चाहे जो भी सामाजिक एवं धार्मिक कारण रहे हों। राजा आदि के घरों से सम्बन्ध रखने वाला भी ब्रह्मचारी अपने जीवन निर्वाह के लिए पूर्णतः गृहस्थाश्रम पर निर्भर रहता था। अनाथ, अपंग, दुःखी एवं भूखे भी भिक्षात्र पर ही आश्रित रहते हैं। इसी तरह सामाजिक एवं धार्मिक कार्य भी दान द्वारा सम्पन्न कराये जाते रहे हैं। धन की तीन गतियाँ होती हैं—दान, भोग और नाश। यदि ईश्वर की अनुकम्पा से धन प्राप्त है तो उसका दान करना, अन्नतर उचित रीति से उसका उपभोग करना चाहिए। इन दो रीतियों से यदि धन का सदुपयोग नहीं किया गया तो उसकी अन्तिम गति नाश ही है। दिया गया दान इस लोक में कीर्ति एवं परलोक में पुण्य की प्राप्ति कराता है। महादानी कर्ण एवं दधीचि अपने यशरूपी शरीर से अमर हो गये हैं।

आज हमारे पास जो भी है या हम जो कुछ भी हैं, वह सब परिवार, समाज और राष्ट्र का है, तब हमें भी उनकी आवश्यकता अनुसार अपना तन, मन और धन सबका त्याग करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। आज समाज की आवश्यकता है कि हम अंगदान करें जिससे हम कई लोगों के जीवन को सुन्दर और सुरक्षित बना सकते हैं। बादल पृथ्वी से जल संग्रह कर पुनः पृथ्वी पर वर्षा देते हैं। उसी तरह श्रेष्ठ लोग समाज से संग्रह कर समाज के लिए त्याग कर देते हैं। यही भावना इस धराधाम पर सत्यं शिवं सुन्दरम् को प्रतिष्ठित करती है।

